P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-10* June- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संस्कृत साहित्य तथा ऐतिहासिक महाकाव्य : अनुशीलनात्मक अध्ययन

Sanskrit Literature and Historical Epics: Subliminal Studies

Paper Submission: 12/06/2020, Date of Acceptance: 26/06/2020, Date of Publication: 28/06/2020

मनीष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफ़ेसर,
संस्कृत एवं प्राच्य भाषा विभाग,
जवाहरलाल नेहरू मेमो0
पी0जी0 कॉलेज,
बाराबंकी, उ0प्र0, भारत

सारांश

भारतीय विद्वानों ने ऐतिहासिक तिथिक्रम तथा घटित विशिष्ट घटनाओं को, पाश्चात्य दृष्टिकोण के विपरीत, उतना महत्त्व नहीं प्रदान किया है, जितना नैतिक आदर्शों, वैयक्तिक जीवन की उत्कृष्टता और राष्ट्रीय उन्नति में समाज के योगदान को महत्त्व दिया है। यही कारण है कि हम तिथिक्रम के अनुसार ऐतिहासिक विवरणों के अंकन में सर्वथा निर्बल रहे हैं। इतिहास का आश्रय लेकर काव्य लिखने की परम्परा संस्कृत साहित्य में नयी नहीं है। इतिहास कोटि के प्राथमिक साहित्य का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त होता है, जो निरंतर समृद्धि को प्राप्त होता गया और आधुनिक काल अर्थात् बीसवीं शती में भी ऐतिहासिक काव्यों की रचना गतिमन्द नहीं हुई है।

Indian scholars have not given much importance to historical dates and specific events, contrary to the Western view, as much as moral ideals, excellence of individual life and society's contribution to national progress. That is why we are completely weak in marking historical details according to Tithikrama. The tradition of writing poetry taking shelter of history is not new in Sanskrit literature. The primary literature of history is mentioned only from the Vedic period, which has attained continuous prosperity and the modern period ie in the twentieth century, the creation of historical poems has not been accelerated.

मुख्य शब्द : चरित, ऐतिहासिक, संस्कृत साहित्य, इतिहास, महाकाव्य।
Charit, Historical, Sanskrit Literature, History, Epic.

प्रस्तावना

साहित्य, सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का दर्पण है तो सांस्कृतिक आचार–विचारों से अनुप्राणित सन्देश को जनसामान्य के हृदय तक पहुँचाने के कारण संस्कृति का वाहक भी है। संस्कृत साहित्य इस सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। संस्कृत भाषा में निबद्ध काव्यों में हृदय के भावों की उतनी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जितनी किसी भी प्रौढ साहित्य के महनीय काव्यों में हो सकती है; तथापि पश्चिमी आलोचकों और विद्वानों के मत में यह साहित्य नितान्त कृत्रिम, अस्वाभाविकता से परिपूर्ण तथा अलंकारों के बोझ से दबा हुआ है। ऐतिहासिक काव्यों के सम्बन्ध में भी पाश्चात्य जगत् की मान्यता आदरणीय नहीं है, जहाँ वे इतिहास – ग्रन्थों का कारण भारतवर्ष में भाग्यवाद की प्रबलता, दैवी शक्तियों पर विश्वास, कर्मफल की अनिवार्यता और संसार की अनित्यता आदि स्वीकार करते हैं। वास्तविकता यह है कि भारतीय विद्वानों ने ऐतिहासिक तिथिक्रम तथा घटित विशिष्ट घटनाओं को, पाश्चात्य दृष्टिकोण के विपरीत, उतना महत्त्व नहीं प्रदान किया है, जितना नैतिक आदर्शों, वैयक्तिक जीवन की उत्कृष्टता और राष्ट्रीय उन्नति में समाज के योगदान को महत्त्व दिया है। यही कारण है कि हम तिथिक्रम के अनुसार ऐतिहासिक विवरणों के अंकन में सर्वथा निर्बल रहे हैं। अस्तु, जीवन का महत्त्व वर्ष और तिथि की अपेक्षा नैतिक उत्कर्ष पर निर्भर है और यही पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों की विचारधारा में मौलिक अन्तर है।

अध्ययन का उद्देश्य

आलेख में ऐतिहासिक काव्यों के अध्ययन के माध्यम से तात्कालिक समृद्ध संस्कृत साहित्य का अनुशीलन प्रस्तुत करना मुख्य ध्येय है।इतिहास का आश्रय लेकर काव्य लिखने की परम्परा संस्कृत साहित्य में नयी नहीं है। इतिहास कोटि के प्राथमिक साहित्य का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त होता

है किन्तु यह भारतीय इतिहास विशुद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोण से लिखा गया, जिसमें तिथियों की प्रायः उपेक्षा सी की गयी। ऐसे पुराणेतिहास साहित्य में महाभारत और रामायण प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ हैं। गुप्तकाल के कवि वत्सभट्टि ने मन्दसौर इत्यादि कतिपय प्रशस्तियाँ ही प्रस्तुत की हैं। हरिषेण कृत 'प्रयाग–प्रशस्ति' में ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त काव्यात्मकता स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। काव्य के रूप में अश्वघोष का 'बुद्धचरित' महाकाव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पुनः बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' लिखकर ऐतिहासिक काव्य के निर्माण का किंचित् सार्थक प्रयास किया, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन की अपेक्षा कवित्त्व की प्रधानता है। किन्तु पूर्णतया पद्यात्मक शैली में लिखा गया पद्मगुप्त परिमल–काव्य प्रथम ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है।

विषय–विस्तार

महाकाव्य के गुणों से युक्त संस्कृत का सर्वप्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य 'परिमल' उपनामधारी पद्मगुप्त द्वारा रचित 'नवसाहसांकचरित' है जिसमें धारा के विश्रुत नरेश नवसाहसांक उपाधिधारी सिन्धुराज का विवाह नागराज शंखपाल की कन्या शशिप्रभा से वर्णित है। पद्मगुप्त मूलतः धारा के परमारवंशी 'वाक्पतिराज' मुंज के राजकवि थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुज सिन्धुराज के उत्कर्षकाल के साक्षी पद्मगुप्त ने प्रकृत महाकाव्य की रचना अनुमानतः 1005 ई0 में की। मम्मट द्वारा काव्य प्रकाश में इनके पद्यों का उद्धरण भी इस कालनिर्णय का पोषक है। इतिहास और कवित्त्व तथा कल्पना के सम्मिश्रणभूत अठारह सर्गों में प्रणीत नवसाहसांकचरित ऐतिहासिकता की मूल दृष्टि से भले ही विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध न हो, किन्तु इतना निश्चित है कि पद्मगुप्त राजनीतिक और साहित्यिक इतिहास की परम्परा से पूर्णतया परिचित थे। काव्य के 11वें सर्ग में परमारवंश का वर्णन अपना ऐतिहासिक महत्त्व रख्ता है और वह शिलालेखों के साक्ष्य द्वारा प्रामाणिक सिद्ध होता है।

नवसाहसांकचरित उच्च कोटि की सरस काव्यशैली और सुबोध भाषा में निबद्ध है, जिसकी शैली पर कालिदास की स्पष्ट छाप है। कालिदास से मानों उपकृत होकर ही परिमल ने उनकी प्रशस्ति में कहा है–

प्रसादविद्यालंकारैस्तेन मूर्तिरभूष्यत।
अत्युज्ज्वलैः कवीन्द्रेण कालिदासेन वागिव।।

ह्रदय को आकृष्ट करने वाले अत्यन्त उज्ज्वल अलंकारों से विभूषित पद्मगुप्त की वाणी कालिदास की कविता के समान ही प्रसादमयी तथा नितान्त सुरुचि–सम्पन्न है। यही कारण है कि इनकी काव्यप्रभा से चमत्कृत विद्वानों ने उन्हें 'परिमल कालिदास' की उपाधि से विभूषित किया है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों के वर्णन–क्रम में बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरित' का संस्कृत साहित्य में आदरणीय स्थान है। अठारह सर्गों में प्रणीत इस महाकाव्य को प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ0 व्यूह्लर को है, जिसके अन्तिम सर्ग में कवि ने स्वयं का जीवन चरित उद्घाटित किया है। कश्मीर में प्रवरपुर (पम्पर) के समीप कोनमुख (खुनमोह) के निवासी ज्येष्ठकलश और नागदेवी के मध्यम पुत्र विल्हण स्वयं दक्षिण भारत के कल्याण नगर के चालुक्यवंशीय नरेश विक्रमादित्य षष्ठ (1076 ई0–1127ई0) के आश्रित कवि थे, जिन्होंने बिल्हण को 'विद्यापति' की उपाधि और छत्र प्रदान किया था। इन्हीं विक्रमादित्य को अमर करने के उद्देश्य से 'विक्रमांकदेवचरित' की रचना की गयी ।

चालुक्यवंशी नरेश का यह चरित–प्रधान काव्य इतिहास से विरुद्ध नहीं जाता, जिसकी पुष्टि तत्कालीन शिलालेखों से भी होती है। किन्तु इस तथ्य के प्रति कोई सन्देह नहीं कि कवि का उद्देश्य विशुद्ध इतिहास का लेखन नहीं है। इतिहास के व्याज से काव्य–प्रणयन के उद्देश्य की यथेष्ट पूर्ति इस महाकाव्य में लक्षित होती है। 'विक्रमांकदेवचरित' में चालुक्यवंशी नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के ऐतिहासिक चरित का वर्णन साहित्य की सरस शैली में निबद्ध है। आरम्भ होता है वंश के मूल पुरुष 'चालुक्य' से। विभिन्न नरेशों के निर्देश के अनन्तर विक्रमादित्य षष्ठ के पिता आहवमल्ल, उनके प्राण–परित्याग के पश्चात् तीनों पुत्रों के मध्य राज्यसत्ता हेतु संघर्ष के वर्णनों के माध्यम से विक्रम द्वारा राज्य की प्राप्ति तथा राजपूत राजकुमारी चन्दल देवी के साथ विवाह आदि घटनाओं का बिल्हण ने अत्यन्त चमत्कृत शैली में प्रणयन किया है। अन्ततः विक्रमपुर नगर–निर्माण, कमलाविलासि–विष्णुमन्दिर–निर्माण और कांची पर आधिपत्य के साथ विक्रमादित्य का चरित वर्णन समाप्त होता है।

बिल्हण की सफलता ऐतिहासिक दृष्टि से आंशिक ही मानी जा सकती है। वास्तव में इतिहास के वृत्तों का आकलन कवि के लिए आनुषंगिक ही कहा जा सकता है किन्तु काव्य की दृष्टि से यह अनुपम रचना है –चमत्कारमण्डित, मौलिक तथा रसपेशल। कश्मीर पर बिल्हण को अत्यधिक मान था। वे उसे सरस्वती के प्ररोह की मुख्यस्थली मानते थे–केसर और कविता कश्मीर के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं उपजती। महाकवि कालिदास के अनुरूप प्रसादगुणमण्डित वैदर्भी शैली के काव्यसौष्ठव से युक्त प्रकृत पद्य में अपने पैतृक स्थान का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट है–

ब्रूमस्तस्य प्रथमवसतेरद्भुतानां कथानां
किं श्रीकण्ठेश्वसुरशिखरिक्रोडलीलाललाम्नः।
एको भागः प्रकृतिसुभगं कुंकुमं यस्यसूते
द्राक्षामन्यः सरससरयूपुण्ड्रकच्छेदपाण्डुम्।।

प्रसाद, माधुर्य और मनोज्ञता से युक्त वर्णनों में बिल्हण की स्वच्छ प्रतिभा, कमनीय पदयोजना तथा रोचक यथार्थता पदे–पदे दृष्टिगोचर होती है। खलजनों के प्रति उनकी यह उक्ति अत्यन्त मार्मिक है–

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलस्य।
निरीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव।।

सामाजिक मूल्यों और चारित्रिक मान्यताओं का मानचित्र उकेर कर बिल्हण ने राजाओं को सुकवि जनों के प्रति विरोध त्याग कर सदाचारी बनाने का प्रयास किया। उनके मतानुसार राम की अक्षय्य कीर्ति और रावण का सीमित यश, आदिकवि वाल्मीकि के कवयन का ही परिणाम था, अतः राजाओं को कवियों का निरादर नहीं करना चाहिए–

लंकापतेः संकुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः।।

इसलिए– 'हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधम्।' बिल्हण कृत इस काव्य को इतिहास की कसौटी पर कसने से बहुविध त्रुटियाँ लक्षित होंगी किन्तु काव्य के रूप में यह सम्पूर्ण कृति है।

संस्कृत साहित्य में महाकवि कल्हण ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इतिहास को इतिहास मानकर ग्रन्थ की रचना की है और तथ्यों को प्रामाणिकढंग से प्रस्तुत किया है। आधुनिक ऐतिहासिक विधि से साधनों का उचित प्रयोग करते हुए निर्मित 'राजतरंगिणी' प्राचीन कश्मीर का एक महनीय ग्रन्थ है जो यद्यपि बीसवीं–इक्कीसवीं शती की वैज्ञानिक ऐतिहासिक पद्धति से परीक्षण करने पर प्रामाणिक नहीं स्वीकार किया जा सकता तथापि अपनी व्यापक दृष्टि तथा आधारभूत ग्रन्थों के समुचित उपयोग के कारण संस्कृत साहित्य में समादरणीय भी है और अद्वितीय भी।

कीथ के मतानुसार कल्हण का जन्म कश्मीर में 1100ई0 के लगभग हुआ था। इनके पिता चण
पक तत्कालीन कश्मीर नरेश हर्षदेव (1089–1101ई0) के विश्वासपात्र प्रधान अमात्य थे। कल्हण का वास्तविक नाम कल्याण था। तत्कालीन राजनैतिक संघर्ष तथा परिवर्तन के युग में कल्हण ने राज्याश्रय का परित्याग कर अलकदत्त नामक व्यक्ति विशेष की प्रेरणा से सुस्सल के पुत्र राजा जयसिंह (1127–1159ई0) के राज्यकाल में 1148ई0 में राजतरंगिणी का प्रणयन आरम्भ किया तथा 1150ई0 में यह महाकाव्य पूर्णता को प्राप्त हुआ।

राजतरंगिणी का अर्थ है– राजाओं की नदी। यह वह ग्रन्थरूपी नदी है, जिसमें राजाओं का उत्थान और पतन वैसे ही द्रष्टव्य है, जैसे नदी में उठती–गिरती तरंगों का। कल्हण स्वतंत्र विचारक और ऐतिहासिक थे, फलतः उन्होंने निष्पक्ष दृष्टि से घटनाओं के अवलोकन के माध्यम से इतिहासकार के समस्त उत्तरदायित्वों को पूर्णतया निभाया है। राजतरंगिणी में आठ तरंग हैं, जिनमें अन्तिम तरंग समग्र ग्रन्थ के आधे से भी मात्रा तथा परिमाण में बढ़कर है। राजतरंगिणी के आरम्भिक तरंग में विक्रमपूर्व द्वादश शती के गोनन्द नामक नरेश का वर्णन प्राप्त होता है। कतिपय शासकों के तिथिरहित उल्लेख के पश्चात् सर्वप्रथम निर्दिष्ट तिथि 813ई0 से आरम्भ कर, 1150ई0 तक चार सौ वर्षों का इतिहास नितान्त प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक है, क्योंकि यह पूर्ण ऐतिहासिक शैली पर निर्मित है और साक्षात् दर्शन और प्रभूत अनुभव के साथ ही शिलालेख, दानपत्र, प्रशस्ति आदि ऐतिहासिक उपकरणों के मार्मिक शोध का परिणाम है।

राजतरंगिणी में काश्मीर के नरेशों का वास्तविक इतिहास प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य रहा है। कल्हण ने राजाओं के उल्लास अथवा देश–काल के ह्रास के सम्बन्ध में प्रचलित पूर्वकालीन समान कथाओं के परिशोधन को राजतरंगिणी का वर्ण्य विषय निर्धारित किया है–

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः।
भैषज्यभूतसंवादिकथायुक्तोपयुज्यते।।

क्योंकि प्रशंसा का पात्र वही गुणवान् पुरुष होता है,जिसकी वाणी सर्वथा उचित न्याय करने वाले न्यायाधीश के समान गतार्थ तथा घटना के वर्णन में दृढ़ रहती है–

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती।।

निश्चय ही कल्हण ने अपने इतिहास में इस आदर्श का पूर्णरूपेण परिपालन किया है। यह निष्पक्ष दृष्टि तथा अविकल अध्ययन का ही परिणाम था कि उनके व्यक्तित्व में एक उपेदशक स्थापित हो गया था। अपने समकालीन नरेशों को शिक्षा देते हुए वे कहते हैं–

ये प्रजापीडनपरास्ते विनश्यन्ति सान्वयाः।
नष्टं तु ये योजयेयुस्तेषां वंशानुगाः श्रियः।।

कवि के महनीय गुणों से युक्त कल्हण ने स्वयं को पक्षपात और संकीर्णता से मुक्त रखते हुए प्रत्येक चिन्तक को अपना राग सुनाया है–

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।
येनायाति यशःकाये स्थैर्यं स्वस्य परस्य च।।

राजतरंगिणी मानवों के हृदय परखने के लिए, अतीत को सर्वथा प्रत्यक्ष बनाने के लिए तथा इतिहास की मार्मिक घटनाओं से उपयोगी शिक्षा तथा मननानुकूल उपदेश ग्रहण करने के लिए आज भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न है। यथा–

कालेन याति क्रिमितां महेन्द्रो महेन्द्रभावं क्रिमिरभ्युपैति।
अयं प्रथीयानयमप्रतिष्ठ इत्येष निष्ठानुचितोऽभिमानः।।

राजतरंगिणी में प्रेरणाप्रद वर्णनों की प्रचुरता है, जिनमें कवि ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षिणी दृष्टि का स्पष्ट परिचय दिया है। जहाँ अन्य कवियों ने राजा के राजोचित वैभव को सर्वोपरि वर्णनीय मानकर उसके परिच्छेदों का वर्णन करने में अपनी सफलता मानी, वहीं कल्हण ने प्रायशः राजाओं का उदाहरण लेकर असंख्य स्थानों पर संकेत किया है कि सुख और दुःख का प्रधान निर्माता दैव है, जिसकी अनुकूलता सदैव अनिश्चित है–

दैवस्याम्बुमुचश्च नास्ति नियमः कोप्यानुकूल्यं प्रति।
व्यंजन्यः प्रियमुत्कटं घटयते जन्तोः क्षणादप्रियम्।।
क्षिप्रं दीर्घनिदाघवासरविपत्सन्तापनिर्वापणम्।
प्रादुष्कृत्य वनस्पतेः प्रकुरुते विद्युद्विसर्गं च यः।।

'प्रस्थिता नानुरुन्धन्ति श्रोतृचित्तानुवर्तनम्' अर्थात् सत्य का उद्घाटन करते हुए यह विचारणीय नहीं है कि सुधी पाठक का मनोरंजन हो रहा है या नहीं– ऐसी आर्ष पद्धति के अनुयायी महाकवि कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा ऋतुवर्णन के प्रसंग में बहुविध नायिकाओं की अवर्णनीय चेष्टाओं के निदर्शन के विपरीत सात्विक वर्णन को प्रधानता दी है और भौतिक वैभव और परिग्रह की आवश्यकता को नकारते हुए यशःकाय को स्थिर (अमर) बनाने की इच्छा प्रकट की है, जिसमें वे सफल भी हुए हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने कल्हण की पर्याप्त प्रशंसा करते हुए उन्हें इतिहास प्रणयन में पूर्णसफल कहा है। उन्होंने भारतीय इतिहास की अभिनव श्रृंखलाओं और घटनाओं से मानव को चेतना प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। काश्मीर के विद्वान्, कल्हण की प्रभविष्णु रचना की पूर्ति अपनी रचनाओं द्वारा करते आए हैं जिनमें जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने अकबर द्वारा कश्मीर पर आधिपत्य के पूर्व तक का इतिहास निबद्ध किया है।

ज्ञान विज्ञान की बहुविध शाखा–प्रशाखाओं के प्रकाण्ड विद्वान् और महान् युगस्रष्टा हेमचन्द्र ऐतिहासिक महाकाव्य 'कुमारपालचरित' के प्रणयनकर्ता हैं, जिनके

जीवन का लक्ष्य ग्रन्थों के निर्माण द्वारा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना नहीं, अपितु विद्या–धर्म का प्रचार प्रसार करना था। हेमचन्द्र यद्यपि गुजरात में अहमदाबाद के निकट धन्दुक में 1089 ई0 में हिन्दू वैश्य परिवार में जन्मे थे किन्तु मात्र पांच वर्ष की अवस्था में उनकी माँ ने उन्हें जैन धर्म में दीक्षित करवा दिया और अल्पायु में ही वे 'सूरि' पद पर प्रतिष्ठित हो गए।

गुजरात के अणहिलपाटन के चालुक्यवंशी नरेशों का उन्हें समाश्रय मिला फलतः जीवनपर्यन्त उन पर हिन्दू धर्म का अभूतपूर्व प्रभाव निरन्तर रहा। चालुक्य नरेश जय सिंह सिद्धराज और उनके पुत्र कुमारपाल के रूप में हेमचन्द्र को जैनमत पर पूर्ण श्रद्धासम्पन्न नेतृत्त्व प्राप्त था। फलतः उनके चरित–वर्णन को उन्होंने साहित्य–सौन्दर्य से मण्डित करने में कुछ उठा नहीं रखा। 'सिद्धहेमचन्द्रानुशासन' के रूप में संस्कृत जगत् को व्याकरण का प्रौढ ग्रन्थ प्रदान करने वाले हेमचन्द्र 'सूरि' द्वारा 1163ई. में रचित कुमारपालचरित'द्वयाश्रय महाकाव्य' के रूप में प्रख्यात है। वस्तुतः इसका कारण यह है कि इसमें चालुक्यवंशी नरेशों के विस्तृत इतिहास वर्णन के साथ ही हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के उदाहृत शब्दों का यथाविधि प्रयोग भी किया है।

'कुमारपालचरित' की रचना दो भाषाओं में है। बीस सर्गों के इस महाकाव्य के प्रारम्भिक 12 सर्ग, जिनमें कुमारपाल से पूर्ववर्ती राजनरेशों का वर्णन है, संस्कृत भाषा में हैं तथा अन्तिम 8 सर्ग, जिनमें कुमारपाल का जीवनचरित सविस्तर अंकित है, प्राकृत भाषा में हैं। प्राकृत भाषा के सर्गों में छह प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग क्रमशः किया गया है और उनके द्वारा प्राकृत के तत्सम्बन्धी व्याकरण का बोध कराया गया है। संस्कृत भाग पर अभयतिलकगणि तथा प्राकृतभाग पर पूर्णकलशगणि की टीका है। 'कलिकालसर्वज्ञ' की महनीय उपाधि से मण्डित आचार्य हेमचन्द्र ने अपने बहुमूल्य प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ के अन्तिम पाँच सर्गों को कुमारपाल को विशेष रूप से समर्पित करते हुए जैनधर्म के प्रचारार्थ उसके कार्य–कलापों को वैशिष्ट्येन वर्णित किया है। व्याकरण के प्रयोगों का दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए निर्मित यह काव्य, शास्त्रकाव्य भी कहा जा सकता है।

धर्म और दर्शन के अगाध सागर हेमचन्द्र को काव्य रचना में अद्भुत कौशल प्राप्त था। काव्य शास्त्र, व्याकरण और कोष–रचना–पद्धति में उनकी व्यक्तिगत विशिष्ट उद्भावनाएं थीं। ऐसे थे हेमचन्द्र जिन्होंने तीन कोटि पंक्तियों से अधिक का साहित्य रचा।

बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में दक्षिण भारतीय राज्य केरल के राजवंश का ऐतिहासिक विवरण अतुल नामक महाकवि द्वारा अपने महाकाव्य 'मूषकवंश' में लिपिबद्ध किया गया। मूषकवंश के यशस्वी नरेश श्रीकण्ठ के आश्रय में अतुल का काव्योत्कर्ष स्थापित करने वाले ऐतिहासिक महाकाव्य के मात्र पन्द्रह सर्ग उपलब्ध होते हैं।

'मूषकवंश' की कथा परशुराम द्वारा क्षत्रिय संहार से आरम्भ होती है, जहाँ उनके भय से प्रकम्पित अज्ञात महारानी, अपने पति की मृत्यूपरान्त मूषक पर्वत पर निवास करती हैं। उनके पुत्र से ही मूषकवंश का प्रारम्भ हुआ। विभिन्न सर्गों में क्रमशः प्रतापी राजाओं के विशद वर्णन के क्रम में तेरहवें और चौदहवें सर्ग, महाराज वल्लभ द्वितीय के पराक्रमों की शौर्यगाथा हैं साथ ही उसके कतिपय सामाजिक कार्यों की यशोगाथा भी। वल्लभ के अनन्तर उसके भ्राता श्रीकण्ठ के शान्त और समृद्धिशाली शासनकाल का कीर्तिगान है, जो पन्द्रहवें सर्ग के मध्य अकस्मात् समाप्त हो जाता है। मूषकवंश ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त काव्यात्मक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त समृद्ध है–

स शालिगोपीजनगीयमानं विशालमाकर्ण्य यशःस्वकीयम्।
लज्जानतास्यो रमणीजनस्य निश्शङ्कदृश्यो नृपतिर्बभूव।।

इस रूप में अतुल का ऐतिहासिक महाकाव्य के क्षेत्र में योगदान अनुपम है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों की महनीय श्रृंखला में 'पृथ्वीराजविजय' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो ऐतिहासिक गौरव रखने के साथ ही साथ साहित्यिक सुरुचि से भी मण्डित है। किन्तु भारतवर्ष के अन्तिम स्वतंत्र हिन्दू–सम्राट् पृथ्वीराज की शहाबुद्दीन गोरी पर विजय का वर्णन करने वाला यह भारतीय काव्य अपूर्ण दशा में ही प्राप्त एवं सुलभ है। कतिपय विद्वानों के मत में बारह तथा अन्य कतिपय विद्वज्जनों के मत में इस महाकाव्य के आठ सर्ग ही अवशिष्ट हैं, जिनमें पृथ्वीराज के पूर्वजों के चरित्र–वर्णन के अनन्तर पृथ्वीराज के विवाह का भी वर्णन अपूर्ण है। स्पष्ट है कि महाकाव्य के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाई है।

प्रकृत महाकाव्य के रचनाकार के नाम का कहीं स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं होता किन्तु अन्तरंग अनुशीलन के आधार पर ऐसी मान्यता है कि इस महाकाव्य का प्रणेता काश्मीरी कवि जयानक अथवा जयरथ है, जिसने पृथ्वीराज के समाश्रित रहते हुए अपने आश्रयदाता की कीर्ति–स्तुति इस महाकाव्य में वर्णित की है। विद्वद्रत्न और इतिहास लेखक जोनराज (1448ई0 लगभग) के द्वारा 'आज्ञामवाप्य विदुषाम्' बताकर महाकाव्य की टीका लिखना इस तथ्य को सबलता से प्रमाणित करता है कि पन्द्रहवीं शती के काश्मीरी–पण्डित–समाज में इस ग्रन्थ का सम्मान था। वस्तुतः यह काव्य पृथ्वीराज द्वारा गोरी पर विजय (1191ई0) के अनन्तर प्रणीत हुआ, अतः निश्चय ही इसका रचनाकाल 1192ई0 अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

अपने पूर्णस्वरूप में उपलब्ध न होते हुए भी इस काव्य के अवशिष्ट अंश चरित निरूपण और ऐतिहासिक मूल्यों की स्थापना में सर्वथा समर्थ हैं। कवि ने अपने नायक को 'राम' की भांति हृदयस्थ करते हुए कहा है–

नरेश्वराणामुपमानतायै कवीश्वराणामपि वर्णनाय।
जगाम यो राममयं शरीरं श्रोता स एवास्तु हृदि स्थितो मे।।

कृत्रिमता से मुक्त काव्य शैली में सरलता का सौष्ठव है–

तापत्रयं दर्शनतो दहन्ति मलत्रयं स्पर्शनतो नुदन्ति।
सन्ध्यात्रयं वन्दनतो जयन्ति स्रोतस्त्रयं विस्मरयन्ति गाङ्गम्।।

चमत्कारी सूक्तियों का यहाँ अभाव नहीं है, जो शाश्वत सत्य का प्रकाशन करती हैं–

साधुः प्रसादात्त्यजति स्वभावं खलस्तु नारोहति साधुभावम्।
निर्गन्धतामेति हि चन्दनादि न सौरभं संघटते रसोने।।

शब्दविन्यास अलौकिक है। कवि कहीं–कहीं एक ही पद की पुनरावृत्ति करता दीखता है–

न हिमालयो न हिमवत्तनया न हिमद्युतिर्न हिमशैलनदी।
हिमवत्सखो न हिमाद्रिवृषो हरहृष्टये तव यशांसि यथा।।

निस्सन्देह अपनी अपूर्णता में भी पूर्णता का प्रदर्शक यह काव्य अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में सर्वथा समर्थ है।

हेमचन्द्र के अतिरिक्त ऐतिहासिक अथवा अर्ध ऐतिहासिक जैन काव्यों की सत्ता संस्कृत में है, परन्तु इन काव्यों का अनुशीलन इन्हें द्वितीय कोटि में परिगणित करने के लिए पर्याप्त है। अनहिलपाटन, गुजरात के प्रख्यात चालुक्य नरेश वीरधवल और उनके पुत्र वीसलदेव के दानशील तथा गुणग्राही मन्त्री वस्तुपाल के जीवन–चरित से सम्बद्ध अनेक काव्यों की प्राप्ति हुई है।

वस्तुपाल के मित्र तथा आश्रित कवि सोमेश्वर ने 'कीर्तिकौमुदी' नामक काव्य का प्रणयन वस्तुपाल की प्रशस्ति के रूप में किया किन्तु एक अन्य काव्यकृति 'सुरथोत्सव'ने सोमेश्वर की यशोगाथा को अमर कर दिया जिसके पन्द्रह सर्गों में चैत्रवंश के नरेश सुरथ और वस्तुपाल के राजनैतिक जीवन को प्रतीकात्मक रूप से वर्णित किया गया है।

इस विषय में वस्तुपाल के आश्रित कवि अरिसिंह द्वारा एकादश सर्गों के महाकाव्य 'सुकृतसंकीर्तन' की रचना प्रासंगिक है, जिसमें वस्तुपाल द्वारा बनवाए गए देवस्थानों तथा धार्मिक कृत्यों का विशिष्ट वर्णन है। सम्भवतः 1225 ई0 में रचित प्रकृत महाकाव्य का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है, और इसका कारण है– वस्तुपाल के जीवनचरित के सहारे तत्कालीन गुजरात राज्य के इतिहास का विशद प्रणयन।

महाकवि बालचन्द्रसूरि द्वारा रचित 'बसन्तविलास' वस्तुपाल को केन्द्र में रखकर निबद्ध तृतीय रचना है। चालुक्य वंश के राजनैतिक इतिहास का विस्तार से वर्णन करने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व से मण्डित यह काव्य साहित्य की दृष्टि से भी श्लाघनीय रचना है। वस्तुपाल का ही एक अन्य नाम बसन्तपाल भी है और इसी नाम के आधार पर इस काव्य का नामकरण सम्पन्न हुआ है।

1242ई0 में वस्तुपाल की मृत्यु के अनन्तर उसके पुत्र जैत्रसिंह के प्रीत्यर्थ यह महाकाव्य प्रणीत हुआ था, जिसमें वस्तुपाल के उदार कार्यों के साथ ही तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय संक्षेप में दिया गया है।

इसी विषय की चतुर्थ रचना 'धर्माभ्युदयकाव्य' है। पुराण–पद्धति पर रचे गए इस काव्य के रचयिता वस्तुपाल के धर्मगुरु आचार्य विजयसेनसूरि के पट्टधर आचार्य उदयप्रभसूरि थे जो वस्तुपाल के समकालीन थे। वस्तुपाल की संघपति के रूप में की गई विभिन्न तीर्थयात्राओं का रोचक वर्णन करने वाला पन्द्रह सर्गों का यह ऐतिहासिक महाकाव्य लक्ष्म्यङ्क है, अर्थात् इसके प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' पद का प्रयोग किया गया है। इस महाकाव्य का एक अन्य नाम संघपतिचरित भी है।

ग्यारहवीं शती के अन्तिम वर्षों में कश्मीर नरेश हर्ष के आश्रित कवि शम्भु ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में 'राजेन्द्रकर्णपूर'नामक काव्य की रचना की जो वस्तुतः परम्परागत काव्य–शैली का अनुकरण करती है। इतिहास से सम्बद्ध होने के कारण इसका उल्लेख मात्र ही पर्याप्त है क्योंकि इसमें ऐतिहासिकता का पुट सर्वथा विलुप्त है।

रणस्तम्भपुर (रणथम्भोर) के शरणागतवत्सल तथा अतुलित पराक्रमी प्रख्यात चौहानवंशी नरेश हम्मीर देव के जीवन–चरित पर आधृत महाकाव्य 'हम्मीरकाव्य' नयचन्द्रसूरि की रचनाधर्मिता का सुदृढ़ प्रमाण होने के साथ ही ऐतिहासिक महाकाव्यों की श्रृंखला की स्वर्णिम कड़ी है। प्रसादमयी भाषा का आकर तथा श्रृंगार वीर और अद्‌भुत रससम्पन्न यह काव्य ग्वालियर के दुर्गपति तोमर महाराज वीरम के व्यंग्यवाक्य की प्रेरणा का फल है–

काव्यं पूर्वकवेर्न काव्यसदृशं कश्चिद् विधाताधुने
त्युक्ते तोमरवीरमक्षितिपतेः सामाजिकैः संसदि।
तद्‌भ्रूचापलकेलिदोलितमनाः श्रृंगारवीराद्‌भुतं
चक्रे काव्यमिदं हमीरनृपतेर्नव्यं नयेन्दुः कविः।।

इस घटना से महाकाव्य के प्रणयन–काल का भी संकेत प्राप्त होता है। वीरम का ग्वालियर के दुर्गपति के रूप में कार्यकाल प्रामाणिक रूप से 1400ई0–1413ई0 सिद्ध है। फलतः हम्मीरकाव्य की रचना 15वीं शती के आरम्भिक वर्षों में हुई होगी–ऐसा निश्चित किया जा सकता है।

अलाउद्‌दीन खिलजी और हम्मीरदेव के मध्य हुए रणथम्भोर के युद्ध (1301ई.) तथा परिणामस्वरूप हम्मीरदेव के प्राणोत्सर्ग की घटना को प्रामाणिक आधार पर वर्णित करने वाले इस महाकाव्य में चौदह सर्ग तथा भिन्न छन्दों में निबद्ध 1572 श्लोक हैं। वीररस से सर्वथा आप्लावित यह काव्य ओजस्विता तथा स्फूर्ति प्रदान करने में सर्वथा समर्थ है। हम्मीर की प्रशस्ति में प्रयुक्त यह पद्य द्रष्टव्य है–

सत्त्वैकवृत्तेः किल यस्य राज्यश्रियो विलासाअपि जीवितं च।
शकाय पुत्रीशरणागतांश्च प्रयच्छतः किं तृणमप्यभूवन्।।

इस महाकाव्य के प्रारम्भिक चार सर्गों में चौहान नरेशों के वंशवृक्ष का कालक्रमागत विवरण अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व का है। तथ्य यह है कि चौहानों के इतिहास की जानकारी के लिये यह काव्य विशुद्ध इतिहास–ग्रन्थ के समान प्रामाणिक और विश्वसनीय है। यह करुणरसपूर महाकाव्य भी है जिसमें धर्म की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने वाले हम्मीर देव की मृत्यु चरम परिणति है। महान् आदर्श के लिए नायक का बलिदान, पाठकों के व्यक्तित्व में सात्विकता का संचरण–हेतु है।

इन काव्यों के अतिरिक्त कतिपय अन्य रचनाओं का संक्षिप्ततम विवरण एवं विध है, जिन्हें इतिहास से सम्बद्ध किया जा सकता है।

'जगडूचरित'लिखकर चौदहवीं शती में सर्वानन्द ने महाकाव्य की कथा–परिधि में विस्तार किया, जिसमें गुजरात के धार्मिक गृहस्थ जगडू को चरितनायक बनाया गया है।

पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में उद्‌दण्डदेव के शिष्य षडक्षरी देव ने 'कविकर्णरसायन' अथवा 'महाचोलराजीय' नामक महाकाव्य को दस सर्गों में निबद्ध किया जिसमें चोल शासकों का इतिहास प्राप्त होता है।

व्याकरण और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् राजनाथ द्वितीय ने अपने आश्रयदाता विजयनगर के सम्राट् राजा सलुव तथा उनके पूर्वजों की चरितावली का वर्णन 'सलुवाभ्युदय' में किया है। तेरह सर्गों के इस महाकाव्य की रचना 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई।

ऐसी ही ऐतिहासिक रचना का सुन्दर निदर्शन 'सुरजनचरित' महाकाव्य है, जिसे 16वीं शती के अन्तिम वर्षों में गौड देशीय कवि चन्द्रशेखर ने लिपिबद्ध किया। इस काव्य के 20 सर्गों में बूंदी के हाडावंशीय राजाओं का चरित साहित्यिक सौन्दर्य के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से भी वर्णित है।

आश्रयदाताओं के चरित–वर्णन में संस्कृत कवि सदैव उदार रहे हैं। राजनाथ डिंडिम कवि का 'अच्युतरायाभ्युदय' 12 सर्गों में निबद्ध एक इतिहास प्रधान महाकाव्य है, जिसमें विजय नगर के शासक अच्युतराय के राज्यकाल की घटनाएं साधारणतया प्रसादमयी भाषा में वर्णित हैं। अच्युत के सभापण्डित होने से इस ग्रन्थ का रचनाकाल 16वीं शती का मध्य भाग है।

पालवंशीय नरेश रामपाल के चरित का आख्यान ग्रन्थ 'रामचरित' सन्ध्याकरनन्दी के वैशिष्ट्यपूर्ण कर्तृत्व का निदर्शन है किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं की विशेष सूचना न होने से हम तन्निर्दिष्ट घटनाओं का विशेष मूल्य नहीं आँक सकते।

उक्त विभिन्न ऐतिहासिक महाकाव्यों के अतिरिक्त कतिपय तिथिहीन महाकाव्य भी संस्कृत जगत् को समृद्ध करने में सफल हुए हैं। केरल के प्रसिद्ध कवि दामोदरचाक्यार द्वारा आठ सर्गों में निबद्ध 'शिवविलास', व्याकरणशास्त्र के महापण्डित नारायण द्वारा बाइस सर्गों में प्रणीत 'सुभद्राहरण', अज्ञात कवि द्वारा रचित दस सर्गों का महाकाव्य 'यदुनाथचरित' तथा उड़ीसा के शासक अनंगभीम के आश्रित कवि ब्रजसुन्दर द्वारा लिपिबद्ध महाकाव्य'सुलोचनामाधव' आदि महाकाव्यों के कालक्रम पर यद्यपि कोई प्रकाश नहीं पड़ता किन्तु विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं के साक्षी कवियों द्वारा इन महाकाव्यों का प्रणयन क्षेत्रविशेष में उनकी अभिरुचियों को अवश्य प्रकट करता है।

एक अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य 'राघवयादवीय' का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके रचयिता सोमेश्वर कवि हैं। राम और कृष्ण की कथा को पन्द्रह सर्गों में समान पद्यों द्वारा वर्णित करने वाले इस काव्य में कवि की प्रतिज्ञा है कि मात्र कालिदास और भारवि के द्वारा प्रयुक्त शब्दों का ही प्रयोग हो। कांचीपुरम् के सत्रहवीं शती के कवि वेंकटाध्वरि द्वारा रचित इसी नाम के स्तोत्र ग्रन्थ से यह अलग प्रतीत होता है, क्योंकि जहाँ सोमेश्वर कृत राघवयादवीय पन्द्रहसर्गों का महाकाव्य है, वहीं वेंकटाध्वरि की रचना मात्र तीस पद्यों तक सीमित है।

संस्कृत में प्रणीत ऐतिहासिक महाकाव्यों के अनन्तर एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य अवशिष्ट रह जाता है, वाक्पतिराज द्वारा रचित प्राकृत भाषा का –'गउडबहो'। प्राकृत में रचित होने पर भी यह महाकाव्य, संस्कृत महाकाव्यों की ही वर्णनरीति का अनुसरण करता है। वाक्पतिराज कन्नौज के यशस्वी नरेश यशोवर्मा के सभापति थे और उनके द्वारा गौड (मगध) नरेश पर प्राप्त विजय ही इस काव्य का वर्ण्य विषय है।

गउडबहो के काव्यांश के अनुसार वाक्पतिराज महाकवि भवभूति से विशेष रूप से प्रभावित थे जो सम्भवतः इनके मार्गदर्शक और गुरु भी थे–

भवभूइ–जलहि–णिग्गय– कव्वामय–रसकणा इव फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेषु कहा–णिबेसेसु।।

यद्यपि वाक्पतिराज के इस ग्रन्थ का साहित्यिक मूल्य इसके ऐतिहासिक मूल्य से कहीं अधिक है, तथापि यह कृति की ख्याति को अक्षुण्ण रखने में सर्वथा समर्थ है। यह काव्य पद्मगुप्त परिमल द्वारा संस्कृत के प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व ही रचनासम्पन्न था। अतः यह हर्षचरित तथा नवसाहसांकचरित के मध्य की कड़ी स्वीकार किया जा सकता है।

उक्त महनीय रचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में स्त्री–कवियों ने भी अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। जहाँ तक सन्दर्भ ऐतिहासिक काव्यों का है, मुक्तक रचनाकारों में विज्जका, सुभद्रा, इन्दुलेखा, फल्गुहस्तिनी तथा शीला भट्टारिका का नाम यत्र–तत्र प्राप्त होता है, यद्यपि इनके काव्य, इतिहास से सम्बद्ध थे या नहीं – यह प्रामाणिक रूप से अज्ञात है। कतिपय स्त्रीरचनाकारों ने प्रबन्ध काव्य का भी निर्माण किया और इसी कोटि में गंगादेवी द्वारा प्रणीत 'मधुराविजय'काव्य ऐतिहासिक काव्यों की माला में उज्ज्वल मणि सदृश है।

विजयनगर साम्राज्य के पराक्रमी शासक कम्पण अथवा कम्पराय की राजमहिषी गंगादेवी ने अपने पति की दक्षिण भारत की विजय यात्राओं, विशेषतया मधुरा के यवन सुल्तान पर उनकी विजय का सत्य तथा स्वाभाविक वर्णन कर मधुराविजय को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक बनाने का सम्पूर्ण उपक्रम प्रस्तुत किया है। विजयनगर के इतिहास के निमित्त नितान्त उपादेय तथा ग्राह्य यह महाकाव्य अपूर्ण दशा में आठ सर्गों में उपलब्ध है। एक–दो उदाहरण कवियित्री के हृदयावर्जक काव्य–रचना–गुणों की अभिव्यक्ति हेतु पर्याप्त हैं–

'घटमानदलाररीपुटं नलिनं मन्दिरमिन्दिरास्पदम्।
परिपालयति स्म निक्वणन् परितो यामिकवन्मधुव्रतः।।'

तथा

''वनभुवः परितः पवनेरितैर्नवजपाकुसुमैः कुलदीपिका।
प्रथममेव नृपस्य निदेशतो विजयिनस्तुरगाननिराजयन्।।''

निष्कर्ष

पूर्वोल्लिखित विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अत्यन्त सरल है कि संस्कृत साहित्य में इतिहास को लक्ष्य और आधार बनाकर विभिन्न महाकाव्यों और काव्य ग्रन्थों की रचना होती रही है। प्रारम्भिक काव्यों में ऐतिहासिकता के उद्भावन हेतु निर्धारित मापदण्डों का अनुपालन भले न किया गया हो किन्तु विभिन्न अवसरों पर कतिपय ऐसे काव्यों की भी उपलब्धता है, जिनमें ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को, साक्ष्य के सुदृढ़ आलोक में प्रस्थापित करते हुए मुख्यतया वर्णित किया गया है। अस्तु ! ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध कराती है, यह निर्विवाद तथ्य है।

आधुनिक काल अर्थात् बीसवीं शती में भी ऐतिहासिक काव्यों की रचनागति मन्द नहीं हुई है। पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी कृत 'जवाहरज्योति', डॉ. उमा शंकर त्रिपाठी रचित 'क्षत्रपतिचरितम्', सुबोधचन्द्र पन्त प्रणीत 'झांसीश्वरीचरितम्', स्वयं प्रकाश शर्मा रचित 'भक्तिसिंहचरितम्', ए.आर.राजवर्मा प्रणीत 'आंड्. ग्लसाम्राज्यमहाकाव्यम्', पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत 'आर्योदयम्', श्री माधवहरिअणे रचित' श्रीतिलकयशोऽर्णवः' तथा के.एस. अय्यास्वामी कृत 'जार्जवंशम्' इत्यादि इतिहासानुगत काव्य–रचनाओं के संस्कृत जगत् में पर्याप्त आदर प्राप्त होने से यह तथ्य सम्पुष्ट होता है कि ऐतिहासिक महत्त्व को प्रदर्शित करने और जनसामान्य तक उनको पहुँचाने वाले काव्य–पुष्प साहित्य–वाटिका में निरन्तर खिलते रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *उपाध्याय, बलदेव (1987), संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी*
2. *आचार्य, डॉ0 कपिलदेवद्विवेदी (1989),संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायण लाल विजयकुमार, इलाहाबाद*
3. *उपाध्याय, रामजी (1970), संस्कृत–साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद*
4. *मिश्र, म0 म0 प्रो0 अभिराज राजेन्द्र (2010), संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी*
5. *त्रिपाठी, डॉ0रमाशंकर (2017), संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी*
6. *अग्रवाल, डॉ0मुरारी लाल (2018), संस्कृत साहित्य का इतिहास, साहित्य सरोवर, आगरा*